क्यों लें महाविद्यालय में प्रवेश ?

1.श्री टोडरमल दिगम्बर जैन सिद्धान्त महाविद्यालय का सन् 1977 से 30 वर्षों का गौरवशाली इतिहास है।

2. यहाँ पूर्णतः धार्मिक परिवेश होने से बालक संस्कारशील धर्मनिष्ठ बन जाते हैं।

3. डॉ. हुकमचन्दजी भारिल्ल, पण्डित रतनचन्दजी भारिल्ल, ब्र. यशपालजी जैन, पण्डित शान्तिकुमारजी पाटिल आदि अनेक विशिष्ट विद्वानों के सान्निध्य में सतत प्रशिक्षण से जैनतत्त्वज्ञान/दर्शन के प्रकाण्ड विद्वान बन जाते हैं।

4. पूरे देश में धार्मिक अवसरों पर प्रवचन/विधान आदि कार्यों के निमित्त भ्रमण के अवसर के साथ-साथ समाज के साथ रहने का प्रायोगिक ज्ञान सीखने को मिलता है।

5.जैनदर्शन के विद्वान होने से स्व के कल्याण के साथ-साथ अपने परिवार-समाज के कल्याण में निमित्त होते हैं।

6. छात्रावास में रहने से अपने हिताहित का निर्णय करने की सामर्थ्य प्रगट होती है।

7. यहाँ विभिन्न प्रान्तों के छात्रों के साथ रहकर पूरी भारतीय संस्कृति का परिचय प्राप्त करने का अवसर मिलता है।

8. महाविद्यालय के छात्र औसतन प्रतिवर्ष राजस्थान बोर्ड तथा विश्वविद्यालय की परीक्षाओं में मैरिट लिस्ट में स्थान प्राप्त करते हैं।

9. संस्कृत भाषा में शास्त्री (बी.ए.) की डिग्री राजस्थान संस्कृत विश्वविद्यालय की होने से अपेक्षाकृत रोजगार के और अधिक उन्नत अवसर उपलब्ध होते हैं।

10. दर्शन व संस्कृत विषय के साथ आई.ए.एस. जैसी राष्ट्रीय प्रतियोगी परीक्षा व आर.ए.एस. आदि प्रान्तीय प्रतियोगी परीक्षाओं में उत्तीर्णता के अवसर प्राप्त होते हैं।

11. यहाँ छात्रों की वक्तृत्व शैली, तर्क शैली एवं अध्ययनशीलता का विशेष विकास होता है, जिससे छात्र अन्य क्षेत्रों में भी सफलता प्राप्त कर सकते हैं।

इसप्रकार टोडरमल दिगम्बर जैन सिद्धान्त महाविद्यालय में प्रवेश पाकर आपके बालक का सर्वांगीण विकास होता है। वह अपने और अपने परिवार, समाज की उन्नति में निमित्त होता है। जैनदर्शन का विद्वान बनकर स्व-पर कल्याण के सम्पादन हेतु अग्रसर होता है।

क्या आप नहीं चाहते कि आपका बालक भी ऐसा हो ? यदि हाँ ... तो महाविद्यालय में प्रवेश हेतु बालक को **दिनांक 8 मई से 25 मई 2007 तक देवलाली (नासिक) महाराष्ट्र** में आयोजित शिक्षण-प्रशिक्षण शिविर में अवश्य भेजें। ●

वीतराग-विज्ञान

वीतराग-विज्ञान ही, तीन लोक में सार।
वीतराग-विज्ञान का , घर-घर होय प्रसार।।

वर्ष : 25 285 अंक : 9

प्रवचनसार कलश पद्यानुवाद

(मनहरण कवित्त)

जिसने किये हैं निर्मूल घातिकर्म सब।
अनंत सुख वीर्य दर्श ज्ञान धारी आतमा।।
भूत भावी वर्तमान पर्याय युक्त सब।
द्रव्य जाने एक ही समय में शुद्धातमा।।
मोह का अभाव पररूप परिणमें नहीं।
सभी ज्ञेय पीके बैठा ज्ञानमूर्ति आतमा।।
पृथक्-पृथक् सब जानते हुए भी ये।
सदा मुक्त रहें अरिहंत परमातमा।।४।।
विलीन मोह-राग-द्वेष मेघ चहुं ओर के,
चेतना के गुणगण कहाँ तक बखानिये।
अविचल जोत निष्कंप रत्नदीप सम,
विलसत सहजानन्द मय जानिये।।
नित्य आनंद के प्रशमरस में मगन,
शुद्ध उपयोग का महत्त्व पहिचानिये।
नित्य ज्ञानतत्त्व में विलीन यह आतमा,
स्वयं धर्मरूप परिणत पहिचानिये।।५।।

ह्न डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल

प्रथम तो निश्चय ही होता है

पूज्यपाद आचार्य श्री देवनन्दिस्वामी के प्रसिद्ध ग्रन्थ इष्टोपदेश के 41 वें श्लोक पर हुए आध्यात्मिकसत्पुरुष श्री कानजीस्वामी के अध्यात्मरसगर्भित प्रवचनों का संक्षिप्त सार यहाँ दिया जा रहा है। मूल श्लोक इसप्रकार है ह्न

ब्रुवन्नपि हि न ब्रूते, गच्छन्नपि न गच्छति।
स्थिरीकृतात्मतत्त्वस्तु, पश्यन्नपि न पश्यति ।।41।।

जिसने आत्मतत्त्व के विषय में स्थिरता प्राप्त की है, वह (पुरुष) बोलते हुये भी नहीं बोलता, चलते हुये भी नहीं चलता और देखते हुये भी नहीं देखता ।

(गतांक से आगे...)

देखो ! संसारमोह के वशीभूत यह जीव परद्रव्य में ही करने-धरने का विचार करता रहता है; किन्तु हे भाई ! इसमें आँख की पलक तक ऊँची-नीची करने का सामर्थ्य नहीं है, फिर परद्रव्य में क्या फेरफार कर पायेगा ?

परद्रव्य में फेरफार होना तो जड़ रजकण की स्वतंत्र योग्यता है और तदनुसार हमें जो विकल्प उत्पन्न होते हैं, वे तत्कालीन उपाधिभाव हैं, स्वभावभाव नहीं।

जिसे निज ज्ञायक स्वभाव की दृष्टि हुई, उसे विकल्पादि की रुचि नहीं है। उस ज्ञानी जीव का आत्मज्ञान के अतिरिक्त अन्य किसी भी कार्य में लक्ष्य जाये तो वह उनकी ओर देखता तक नहीं है। यद्यपि कमजोरीवश भक्ति, पूजा, तीर्थयात्रा आदि के भाव अवश्य आते हैं; किन्तु धर्मी को उन परभावों की अभिमुखता नहीं होती। जिसे अपने निज भगवान का विश्वास हो गया, उसे अन्य वस्तुओं में कैसे रुचि हो सकती है ?

प्रश्न : प्रथम व्यवहार होता है कि निश्चय ?

उत्तर : स्वाश्रय का नाम निश्चय और पराश्रय का नाम व्यवहार है। निश्चय बिना पराश्रयरूप व्यवहार, सच्चा व्यवहार नहीं है। निश्चय स्वसन्मुखता का नाम है और व्यवहार परसन्मुखता का नाम है। प्रथम परोन्मुखता हो और फिर स्व-सन्मुखता हो ह्न यह कदापि संभव नहीं; अत: प्रथमत: तो निश्चय ही होता है।

जगत के जीव धर्म तो करना चाहते हैं; किन्तु धर्मी (आत्मा) कैसा है ?

उसकी उन्हें पहिचान नहीं है और जबतक आत्मा की पहिचान नहीं हो, तबतक धर्म कैसे हो सकता है ? बहिर्मुखवृत्ति में तो जीव को अनादिकाल से अपनापना है; किन्तु उस वृत्ति से अपना हित नहीं होता। स्वभाव लक्ष्य में आये बिना प्रथम पराश्रित व्यवहार हो और फिर स्वाश्रितपना आये ह्न ऐसा संभव नहीं है; क्योंकि वस्तुस्थिति ही ऐसी नहीं है।

प्रथमत: स्वाश्रयपूर्वक सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र प्रगट करे, वहाँ जबतक पूर्णता न हो तबतक चारित्र की विपरीततारूप दया-दान-पूजादि का राग अर्थात् पराश्रित भाव आते हैं। इसी को व्यवहार, परसमय, उपाधिभाव या बंधभाव कहा जाता है। स्वाश्रितदृष्टि प्रगट होने के पश्चात् जबतक पूर्णता न हो तबतक पराश्रितरूप व्यवहार आये बिना नहीं रहता; किन्तु वह व्यवहार दोषरूप है, धर्मी को उसमें उत्साह नहीं है।

प्रश्न : व्यवहार को प्रयोजनवान कहा है न ?

उत्तर : जानने की अपेक्षा व्यवहार प्रयोजनवान है; किन्तु आदर करने की अपेक्षा प्रयोजनवान नहीं है। हे भाई ! तेरी अद्भुत सामर्थ्य को वाणी के माध्यम से नहीं कहा जा सकता; किन्तु तुझे निज सामर्थ्य की खबर नहीं होने से तू बाहर में ही भटक रहा है; अनन्तकाल व्यतीत हो गया और तुझे आज तक सुख की प्राप्ति नहीं हुई। समयसार की 413 वीं गाथा में भी कहा है कि अनादिरूढ, व्यवहारविमूढ, प्रौढविवेकवाले निश्चय पर अनारूढ वे पुरुष निश्चितरूप से परमार्थ सत्य समयसार को नहीं देखते हैं।

स्वाश्रय मुक्ति का कारण और पराश्रय बंध का कारण होने पर भी अज्ञानी जीव की दृष्टि सदैव पराधीन भावों की ओर ही रहती है। पराधीन भाव से ही वह अपना हित मानता है; किन्तु इससे दृष्टि में स्वाश्रितता नहीं आती और न ही आत्मा का हित होता है। अत्यन्त सरल और सीधे शब्दों में आचार्य हमारे हित की बात समझा रहे हैं; किन्तु लोगों को यही बात कठिन लगती है।

प्रश्न : स्वाश्रितरूप निश्चय और पराश्रितरूप व्यवहार ह्न दोनों एक ही समय में विद्यमान हैं क्या ?

उत्तर : हाँ ! दोनों एक ही समय में विद्यमान हैं। वहाँ स्व का आश्रय लेकर

जितने अंश में सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र प्रगट हुआ, उतने अंश में संवर-निर्जरा है और जितनी पराश्रितता है, उतने अंश में राग है, व्यवहार है। इसप्रकार निश्चयस्वरूप संवर-निर्जरा और व्यवहाररूप राग ह्न दोनों एक ही समय में साधक जीव को होते हैं।

भगवान कहते हैं कि हे जीव ! तू बाह्य व्यवहार छोड़ दे। समयसार के बंधाधिकार में आचार्य कुन्दकुन्द कहते हैं कि ' मैं परद्रव्य को मार सकता हूँ या उसकी रक्षा कर सकता हूँ ह्न ऐसा मिथ्या अध्यवसायरूप व्यवहार तू छोड़ दे।' सर्वज्ञदेव ने पराश्रयरूप समस्त व्यवहार छोड़ने का उपदेश दिया है; अत: व्यवहार की सन्मुखता छोड़ना चाहिये।

एक मुक्ति का उपाय है और एक बंध का कारण है ह्न ऐसा निश्चय-व्यवहार जीव को एक साथ वर्तता है। ज्ञानधारा और कर्मधारा दोनों ही एक साथ चल रही हैं; किन्तु दोनों भिन्न-भिन्न है। यहाँ व्यवहार नहीं है ह्न ऐसा नहीं, व्यवहार तो है; किन्तु वह छोड़नेयोग्य है, ग्रहण करनेयोग्य नहीं है।

चौथा, पाँचवा, छठवाँ आदि गुणस्थानस्वरूप जो भेद हैं, वे सब व्यवहारनय के विषय हैं। त्रिकाल स्वभाव तो निश्चय है, उसमें सम्यग्दर्शन की पर्याय भी भेद होने से व्यवहार ही है; किन्तु उसे स्वीकार नहीं करे तो तीर्थ का लोप हो जायेगा, अत: व्यवहार जाननेयोग्य है; किन्तु आदरने योग्य नहीं।

किसी बालक को अच्छी सी कहानी की किताब पढ़ने को मिले और उसे पढ़ने में वह मशगूल हो जावें तथा पढ़ते-पढ़ते चार-पाँच पन्ने ही बाकी रहे, तभी उसके पिताजी उसे कोई कार्य बतावे और उसे वह कार्य करने जाना पड़े, तो भी उसके अन्तर में यही विचार चलता है कि यह काम जल्दी से पूरा हो और मैं अपनी किताब पढ़ूँ।

उसीप्रकार धर्मी ने शुद्ध ज्ञायक को अपना ध्येय बनाया है, वहाँ कदाचित् रागादि उत्पन्न हो तो भी अन्तर में एक ही धुन चलती है कि मैं राग से छूटकर अपने निज स्वभाव में कब एकाग्र होऊँ ? जब अन्तर में ही प्रभु का रंग लगा हो तो वह छूटेगा कैसे ? धर्मी को भी राग आता है; किन्तु वह उसमें एकाकार नहीं होता, उसका स्वामी नहीं होता। वह राग से सदैव जुदा ही रहता है। **(क्रमश:)**

आत्मा किसका कर्त्ता-भोक्ता है ?

परमपूज्य सर्वश्रेष्ठ दिगम्बराचार्य कुन्दकुन्द के प्रसिद्ध परमागम नियमसार के 31 से 33 वें श्लोक (कलश) पर हुए आध्यात्मिकसत्पुरुष श्री कानजीस्वामी के अध्यात्मरसगर्भित प्रवचनों का संक्षिप्त सार यहाँ दिया जा रहा है।

भावकर्मनिरोधेन द्रव्यकर्मनिरोधनम्।
द्रव्यकर्मनिरोधेन संसारस्य निरोधनम्॥३१॥

भावकर्म के निरोध से द्रव्यकर्म का निरोध होता है; द्रव्यकर्म के निरोध से संसार का निरोध होता है।

श्री पद्मप्रभमलधारिदेव महान सन्त मुनि थे। वह कहते हैं कि भावकर्म के निरोध से द्रव्यकर्म का निरोध होता है। देखो ! यदि द्रव्यकर्म के उदय के कारण विकार होता हो तो आत्मा भावकर्म का निरोध नहीं कर सकता। यहाँ तो कहते हैं कि जहाँ चैतन्य-सन्मुख झुका, वहाँ भावकर्म का निरोध हो जाता है और उसका निरोध होने पर द्रव्यकर्म का भी निरोध हो जाता है।

वास्तव में अपने विपरीत पुरुषार्थ से जो भावकर्म उत्पन्न हो गया, उसका तो निरोध कहीं हो नहीं सकता; क्योंकि उसका तो उत्पाद हो ही गया और उत्पाद का उसीसमय तो व्यय होता ही नहीं। वस्तुत: चैतन्य में एकाग्र होने पर भावकर्म की उत्पत्ति ही नहीं हुई; इसलिए आत्मा ने भावकर्म का निरोध किया ह्न ऐसा व्यवहार से कहा जाता है।

'मैं शुद्ध चिदानन्द चैतन्य हूँ' ह्न ऐसे भानपूर्वक जिस समय उसमें एकाग्र हुआ, उस समय रागादि भावकर्म उत्पन्न ही नहीं हुआ, इस अपेक्षा से आत्मा ने भावकर्म का निरोध किया ह्न ऐसा कहा जाता है। और जहाँ भावकर्म ही नहीं हुआ, वहाँ द्रव्यकर्म भी नहीं आया। द्रव्यकर्म आने वाला था और रुक गया ह्न ऐसा नहीं है; अपितु उस समय वह आने वाला था ही नहीं, इसलिए उसका निरोध किया जाता है; और जड़कर्म के अभाव से संसार का निरोध हो जाता है। शास्त्र में कहते हैं कि 'विकार को रोको' इसका अर्थ ऐसा है कि 'निर्विकल्प स्वभाव में ठहरो।'

संज्ञानभाव-परिमुक्त-मुग्धजीव:,
कुर्वन् शुभाशुभमनेकविधं स कर्म।
निर्मुक्तिमार्गमणुमप्यभिवांछितुं नो,
जानाति तस्य शरणं न समस्ति लोके॥३२॥

जो जीव सम्यग्ज्ञानभावरहित विमुग्ध (मोही, भ्रान्त) है, वह जीव शुभाशुभ अनेकविध कर्म को करता हुआ मोक्षमार्ग को लेशमात्र भी वांछना नहीं जानता, उसको लोक में (कोई) शरण नहीं है।

श्रीगुरु की सेवा के प्रसाद से जो शुद्धात्मा को जानता है, वह तो मुक्ति प्राप्त करता है ह्न ऐसा पहले ही कहा। अब यहाँ ऐसा कहते हैं कि जो जीव शुद्धात्मा को नहीं जानता उसे तो संसार में कहीं भी शरण नहीं है।

'मैं राग रहित चैतन्य ज्ञाता-दृष्टा हूँ' ह्न ऐसा नहीं जानकर जो राग से ही लाभ मानता है, वह निमित्त और राग की ही वाँछा करता है; चैतन्य के आश्रयरूप मोक्षमार्ग की वाँछा नहीं करता। जिसे चैतन्य का भान नहीं और शुभाशुभ राग में ही मुग्धता है, उसे सम्यग्ज्ञान का भाव ही नहीं; वह तो शुभाशुभ में ही लीन है। जो शुभ से लाभ मानता है, उसके तो शुभ के साथ मिथ्यात्व का अशुभभाव भी साथ ही है। ऐसा जीव राग से लाभ मानकर राग को ही वाँछता है और मोक्षमार्ग की वाँछना को तो जानता भी नहीं ह्न उसको तो इस लोक में कोई शरण ही नहीं है।

सम्यग्ज्ञान क्या है ? इस तरफ जिसका लक्ष्य नहीं और व्यवहार के आदर से ही लाभ मानता है, उसके तो मोक्षमार्ग की वाँछा भी नहीं, उसका तो लक्ष्य ही राग में पड़ा है। जिसको राग की वांछा है, उसको तो निश्चय-व्यवहार में से एक का भी भान नहीं है। जिसको रागरहित चैतन्य का भान है, जिसके चित्त में व्यवहार के आश्रय से लाभ नहीं है, उसको ही निश्चय और व्यवहार का भान है। उसे ही चैतन्यस्वभाव का शरण है तथा वही चैतन्य की शरण से मुक्ति प्राप्त करता है।

और अज्ञानी तो व्यवहार में मूढ़ है, उसे शरणभूत चैतन्य का भान नहीं होने से इस जगत में कोई शरण नहीं है। जिसको आत्मा का सम्यग्ज्ञान तो है ही नहीं तथा सम्यग्ज्ञान की उपलब्धि की भावना भी नहीं है, कामना भी नहीं है और बाह्य

क्रियाकाण्ड से अथवा राग से लाभ मानकर उसी की वांछा कर रहा है; वह जीव शुभाशुभ कर्म को करता है, किन्तु मोक्षमार्ग की वांछा नहीं करता। अज्ञानी को एक समय में शुभ-अशुभ दोनों बतलाये। दयादि शुभभाव के समय भी मिथ्यात्वरूप अशुभ तो उसके साथ ही है। ऐसे अज्ञानी को चैतन्याश्रित मोक्षमार्ग की भावना नहीं है, उसको इस जगत में कोई शरण नहीं है। देखो ! टीकाकार ने कितना सरस श्लोक कहा है ह्न

यः कर्मशर्मनिकरं परिहृत्यं सर्वं,
निःकर्मशर्मनिकरामृतवारिपूरे।
मज्जन्तमत्यधिकचिन्मयमेकरूपं,
स्वं भावमद्वयममं समुपैति भव्यः ॥३३॥

जो समस्त कर्मजनित सुखसमूह का परिहरण करता है; वह भव्यपुरुष निष्कर्म सुखसमूहरूपी अमृत के सरोवर में मग्न होते हुए अतिशय चैतन्यमय, एकरूप, अद्वितीय निजभाव को प्राप्त करता है।

यहाँ प्रतिकूलता की तो बात ही नहीं ली; किन्तु पैसा, स्त्री इत्यादि में सुख की कल्पना को भी जो परिहरण करता है तथा कर्म की ओर झुकाव होने से व्यवहार रत्नत्रय के शुभ विकल्प में भी जो सुखकल्पना को छोड़ता है; वह भव्यजीव निष्कर्म सुख के समूहरूपी अमृत सरोवर में मग्न होकर निजभाव को प्राप्त करता है।

कर्मजनित सुख के सामने यहाँ निष्कर्म सुख की बात है। व्यवहार के पुण्यपरिणाम में जो जीव संतुष्ट हो जाता है, वह जीव कर्मजनित सुख को छोड़ता नहीं है अर्थात् पर में सुख की कल्पना को नहीं छोड़ता और चैतन्य की आनन्ददशा से वंचित ही रहता है। तथा जो जीव उस परभाव में सुख की कल्पना को छोड़ देता है, वह भव्य पुरुष निष्कर्म (कर्मरहित) सुखसमूहरूपी अमृत सरोवर में मग्न होकर अतिशय चैतन्यमय एकरूप अद्वितीय निजभाव को पाता है। ●

छपकर तैयार

आपको यह जानकर प्रसन्नता होगी कि १० माह के अल्पकाल में ही डॉ. भारिल्ल कृत समयसार की ज्ञायकभावप्रबोधिनी टीका की ६ हजार प्रतियाँ व पश्चात्ताप की १० हजार प्रतियाँ समाप्त हो गई हैं और अब ज्ञायकभावप्रबोधिनी टीका का ४ हजार का और पश्चात्ताप का ५ हजार का तीसरा संस्करण छपकर तैयार है।

छहढाला प्रवचन

रे जीव ! सुन, यह तेरे दुःख की कथा

दुर्लभ लहि ज्यों चिन्तामणि, त्यों पर्याय लही त्रसतणी।
लट-पिपील-अलि आदि शरीर, धर-धर मर्यो सही बहु पीर॥५॥

(सुप्रसिद्ध आध्यात्मिक विद्वान दौलतरामजीकृत छहढाला पर गुरुदेवश्री के प्रवचन पाठकों के लाभार्थ यहाँ प्रस्तुत किये जा रहे हैं।)

(गतांक से आगे ...)

प्रथम तो एकेन्द्रिय से निकलकर त्रस होना दुर्लभ है और त्रस होने मात्र से दुःख से छुटकारा नहीं हो जाता। आत्मज्ञान से ही दुःखों से छुटकारा होता है।

एकबार चातुर्मास के समय में जमीन के अन्दर बड़े-बड़े पंखवाले बहुत जीवों की उत्पत्ति हुई। बड़ी मुश्किल से वे बिल से बाहर निकल रहे थे कि बाहर निकलते ही कौओं या चिड़ियों ने चोंच में पकड़कर उन्हें खा लिया। वे बेचारे अभी तो उत्पन्न होकर बाहर ही आये थे कि सीधे ही कौओं का भक्ष्य बन गये।

अरे, ऐसा सुनकर या नजरों से देखकर भी जीव की आँखें क्यों नहीं खुलतीं? वह समझता है कि ये सब दुख तो दूसरे जीवों के लिए ही है; किन्तु अरे भाई ! ऐसे दुःख अनन्तबार तुमने भी सहन किये; परन्तु अभी साता के मद में उनको भूल गये हो। दूसरे जीवों को जैसा दुःख हो रहा है, वैसा दुःख तुम भी अनन्त बार भोग चुके हो। अतः अब सावधान होकर स्व-पर को यथार्थ समझो।

बापू ! यह मानव-जीवन बहुत महँगा है और उसमें भी धर्म का सुनना व समझना तो अतिदुर्लभ है। बहुत से जीव राग को या पुण्य को ही धर्म समझकर उसमें ही फँस रहे हैं। बहुत लोग बाह्य वैभव, लक्ष्मी आदि की प्राप्ति के लिए दौड़-धूप मचा रहे हैं और राग-द्वेष करके हैरान हो रहे हैं; परन्तु अपना चैतन्य-वैभव प्राप्त करने के लिए उद्यम नहीं करते, उसकी कीमत ही उन्हें नहीं दिखती। भाई ! बाह्य पदवियाँ या बाह्य वैभव में तेरा कुछ भी कल्याण नहीं है; ऐसा वैभव तुझे अनन्तबार मिला तो भी तू संसार में ही रहा, दुःखी ही रहा।

यदि एकबार भी तूने अन्तरंग चैतन्य पद के वैभव की प्राप्ति कर ली तो तेरी मुक्ति

निश्चित ही हो जायेगी और तुझे महान सुख की प्राप्ति होगी। ऐसा मनुष्य अवतार और उसमें भी आत्मा की समझ का सुअवसर महाभाग्य से तुझे मिला है, जिसे अब आत्महित का उद्यम करके सफल बनाना चाहिये।

अभी तक अज्ञान से संसार में परिभ्रमण करते-करते तिर्यंचगति में एकेन्द्रिय से चतुरिन्द्रिय तक की पर्यायों में जीव ने जो दुःख भोगा, उसका कथन किया; जब कभी वह पंचेन्द्रिय-तिर्यंच हुआ, तब क्या हुआ ? यह छठवें श्लोक में कहते हैं ह्न

कबहूँ पंचेन्द्रिय पशु भयो, मन बिन निपट अज्ञानी थयो।
सिंहादिक सैनी ह्वै क्रूर, निबल पशु हति खाये भूर।।६।।

जीव कदाचित् पंचेन्द्रिय हुआ तो असंज्ञी हुआ, उसे पाँच इन्द्रियाँ तो मिलीं; परन्तु मन रहित होने से विचारशक्ति रहित मूढ़ ही रहा। असंज्ञीदशा में तीव्र अज्ञान है, उसमें हित-अहित का कुछ भी विचार नहीं है; उपदेश को ग्रहण करने की शक्ति ही नहीं है। यद्यपि उसे कान हैं, वह सुनता भी है; परन्तु समझने की बुद्धि या विचारशक्ति उसको नहीं है, भाषाज्ञान उसको नहीं है। उसके ज्ञान का क्षयोपशम बहुत अल्प है और मोह तीव्र है। इस कारण पंचेन्द्रिय होकर भी वह जीव बहुत दुःखी है। नरक के जीव तो संज्ञी हैं, वे अपने हित-अहित का विचार कर सकते हैं, हितोपदेश को ग्रहण कर सकते हैं; उन नरक के जीवों से भी असंज्ञी जीव विशेष दुःखी हैं। असंज्ञीदशा में जीव को सम्यक्त्वादि धर्म की प्राप्ति नहीं हो सकती। वीतराग-विज्ञानरूप धर्म की प्राप्ति का अवसर संज्ञीदशा में ही है।

सर्प-मेंढक-मछली आदि तिर्यंच संज्ञी (मन वाले) भी होते हैं और असंज्ञी भी होते हैं। किसी का शरीर बड़ा हो; परन्तु मन से रहित हो। वे देखते हैं, सुनते हैं; परन्तु उनमें विचार करने की शक्ति नहीं होती। विचाररहित प्राणी को मूर्ख कहा जाता है; वैसे ही ये असंज्ञी जीव अत्यन्त मूर्ख हैं। वे कुछ भी हितोपदेश ग्रहण नहीं कर सकते। जीव पंचेन्द्रिय होकर भी ऐसा ही मूढ़ रहा और उसने बहुत दुःख भोगे। अरे प्रभु ! अब तो तुम मनवाले मनुष्य हुए हो, आत्मा का विचार करने की शक्ति तुम्हें प्रगट हुई हैं; इसलिए अब तुम इस अवसर को मत चूकना। क्योंकि ह्न

यह मानुष पर्याय सुकुल सुनिवो जिनवानी।
इहविध गये न मिले सुमणि ज्यों उदधि समानी।।

निजस्वरूप को भूलकर संसार में भ्रमण करता हुआ जीव कभी संज्ञी भी हुआ तो सिंह-बाघ-अजगर आदि क्रूर तिर्यंच हुआ; उसको मन, विचारशक्ति मिली; परन्तु परिणाम विशुद्ध न हुए। अतः क्रूरता से खरगोश-हिरणादि दूसरे निर्बल पशुओं को मार-मार कर खाया। इसप्रकार महान पाप करके अनंतबार नरकादि में भ्रमण किया।

कोई जीव एकेन्द्रिय से निकलकर सीधे संज्ञी पंचेन्द्रिय भी होते हैं; बीच में विकलेन्द्रियपना या असंज्ञीपना होना ही चाहिए ह्न ऐसा कोई नियम नहीं है। एकेन्द्रिय से निकलकर कोई भी जीव सीधे मोक्ष में या स्वर्ग में या नरक में नहीं जा सकता, किन्तु तिर्यंच या मनुष्य में ही जाता है। यहाँ तो कहते हैं कि ह्न अरे, संज्ञी पंचेन्द्रिय होकर भी अज्ञानी जीव ने जरा-सी भी दया न करके अत्यन्त निर्दयता से क्रूर होकर निर्बल पशुओं एवं मनुष्यों को भी चीर-फाड़कर खाया।

महावीर भगवान का जीव भी पूर्व के दसवें भव में जब सिंह था और अज्ञानदशा में था, तब क्रूरता से हिरन को मारकर खा रहा था। उसी वक्त आकाश से दो मुनिराज उतरे और निडरता से सिंह के सामने आकर उपस्थित हुए। मुनियों की वीतरागमुद्रा देखकर सिंह स्तब्ध हो गया और आश्चर्य से उनकी ओर देखता रहा। तब मुनियों ने उसे सम्बोधित किया कि ह्न ''अरे सिंह ! वास्तव में तू सिंह नहीं है, तू तो चैतन्यभगवान है, तू भविष्य में तीनलोक का नाथ तीर्थंकर होनेवाला है। भगवान के श्रीमुख से हमने सुना है कि तेरा जीव आगे चलकर दसवें भव में तीर्थंकर महावीर होगा। अरे जग का तारनहारा, क्या यह क्रूर परिणाम तुझे शोभा देता है? हिंसा के इन क्रूर परिणामों को तू शीघ्र ही छोड़ दे। अंदर में शान्त परिणामी आत्मा है, उसे लक्ष्य में ले। अरे, यह कैसा गजब कार्य है कि पंचेन्द्रिय पंचेन्द्रिय को मारे ! चेतन को ऐसी हिंसा का परिणाम शोभा नहीं देता।''

मुनियों का उपदेश सुनकर सिंह चकित रह गया; तत्क्षण उसका परिणाम पलट गया। वह आश्चर्य से मुनियों को देखता हुआ विचार करता है कि ह्न ''अरे ! ये हैं कौन? साधारण लोग तो मुझे देखते ही भयभीत होकर दूर भागते हैं, जबकि ये तो सामने आकर निर्भयरूप से मेरे सन्मुख खड़े हैं और वात्सल्य से मुझे मेरे हित की बात सुना रहे हैं।'' इसप्रकार सिंह का क्रूर परिणाम छूट गया और अन्तर्मुख होकर उसने सम्यग्दर्शन प्राप्त किया। फिर उसने अत्यंत भक्ति-भाव से मुनिवरों की भक्ति की, प्रदक्षिणा दी और पश्चात्ताप से उसकी आँखों से अश्रु की धारा बहने लगी। **(क्रमशः)**

ज्ञान गोष्ठी

सायंकालीन तत्त्वचर्चा के समय विभिन्न मुमुक्षुओं द्वारा
पूज्य स्वामीजी से पूछे गये प्रश्न और स्वामीजी द्वारा दिये गये उत्तर

प्रश्न : क्या राग भी असत् है, क्या राग से स्व और पर को लाभ नहीं होता ?

उत्तर : वास्तव में आत्मा के शुद्धस्वभाव की अपेक्षा से राग भी असत् है। उस राग से स्व और पर को लाभ नहीं होता। देखो ! जिस राग के निमित्त से तीर्थंकर नामकर्म बंधता है, उस राग से भी सचमुच किसी को लाभ नहीं होता; क्योंकि वर्तमान में उस राग के कारण ही जीव की वीतरागदशा अटक गई है।

जब स्वभाव के आश्रय के बल से उस राग का छेद करेगा, तभी वीतरागता और मुक्ति होगी; इसलिए उस राग से स्व को लाभ नहीं है।

अब उस राग से दूसरे को भी लाभ नहीं है ह्न यह समझाते हैं। प्रथम तो उस राग के निमित्त से जो तीर्थंकर नामकर्म बँधा है, उसका फल तो राग का अभाव होने के पश्चात् ही प्राप्त होगा अर्थात् जब उस राग का अभाव करके केवलज्ञान प्रगट करेगा, तब वह तीर्थंकर नामकर्म उदय में आयेगा और दिव्यध्वनि द्वारा उपदेश होगा, तभी वह अनन्तसुख का भोक्ता बनेगा। अब जबतक दिव्यध्वनि के श्रोता का लक्ष्य वाणी के ऊपर ही रहेगा, तबतक उसे विकल्प और राग की उत्पत्ति होगी और जब उस वाणी का लक्ष्य छोड़कर स्वयं अपने लक्ष्य से स्थिर होगा, तभी सम्यग्दर्शनादि का लाभ होगा; इसलिए निश्चय हुआ कि राग से पर को भी लाभ नहीं होता।

जब स्वयं को निज लक्ष्य से लाभ हुआ, तब उपचार से ऐसा कहा जाता है कि भगवान की वाणी से अपूर्व लाभ हुआ अथवा '**उदय श्रीजिनराज का भविजन को हितकार**'; परन्तु यह मात्र उपचारकथन है। वास्तव में पर से लाभ हुआ नहीं है, अपने राग से भी लाभ नहीं है, लाभ तो स्व-स्वभाव के आश्रय से ही हुआ है।

प्रश्न : सभी जीवों के प्रति मैत्रीभाव रखना तो शुभभाव है न ?

उत्तर : सभी आत्मायें सिद्धसमान हैं। किसी के प्रति राग-द्वेष नहीं ह्न ऐसा मैत्रीभाव ज्ञाता-दृष्टा स्वभाव है, शुभभाव नहीं।

प्रश्न : पुण्य से मिलनेवाले पैसे को पाप क्यों कहा है ?

उत्तर : पैसे को दस प्रकार के परिग्रह में गिना है ह्न इस अपेक्षा से पाप कहा है, किन्तु वास्तव में तो पैसा ज्ञेय मात्र है, उसको अपना मानकर ममता करना, वह पाप है; और उस पाप में पैसा निमित्त है, इसलिए उसको भी पाप कहा है।

प्रश्न : समयसार गाथा ७२ में पुण्य-पाप को अशुचि कहा, जड़स्वभाव भी कहा; अत: हम भक्ति आदि का शुभराग करें या नहीं ?

उत्तर : जब तक वीतरागता न हो, जब तक राग अपने काल में हुये बिना रहेगा नहीं; परन्तु राग मेरा स्वभाव नहीं है, मेरा भाव तो राग रहित चैतन्य स्वभाव है ह्न इसप्रकार अन्तर में राग और चैतन्यस्वभाव का भेदज्ञान करना चाहिये।

राग का अभाव तो वीतरागी के होता है, किन्तु जो रागी है, उसके तो भक्ति आदि का भाव हुये बिना रहेगा नहीं। दो दशाओं में शुभराग नहीं होता, या तो तीव्र विषयकषाय में पड़े हुये हों या फिर जो वीतराग हो गये हों। निचलीदशा में रहनेवाले पात्रजीव को भक्ति-स्वाध्याय आदि का शुभभाव आये बिना कैसे रह सकता है ?

फिर भी धर्मी को अन्तर में भान होता है कि रागभाव हमारे स्वभाव से विरुद्धभाव है, हमारा स्वभाव राग का कर्त्ता नहीं है, हम तो पवित्र चैतन्यस्वभावी हैं।

इसप्रकार शुभराग होने पर भी धर्मी उसे अपना कर्त्तव्य नहीं मानता, वह तो स्वभाव के आश्रय से प्रगट होनेवाले वीतरागभाव को ही अपना कर्त्तव्य मानता है।

प्रश्न : पुण्य-पाप के भाव को जड़ क्यों कहते हैं ?

उत्तर : पुण्य-पाप के भाव में चेतन नहीं, इसलिये उसे जड़ कहते हैं; पुण्य-पाप स्पर्श-रस-गन्धवाला जड़ नहीं, किन्तु उसमें जाननापना नहीं है। समयसार में जीव-अजीव अधिकार में उसको अजीव कहा है तथा कर्त्ता-कर्म अधिकार में जड़ कहा है। चूँकि पुण्य-पापभाव में ज्ञान नहीं है ह्न इस अपेक्षा से उसको जड़ कहा है। ●

समाचार दर्शन ह्न

पंचकल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव सानन्द सम्पन्न

1. अलवर (राज.) : यहाँ नव विकसित चेतन एन्क्लेव कॉलोनी में श्री दि. जैन कुन्दकुन्द स्मृति ट्रस्ट, अलवर के तत्त्वावधान में श्री दि. जैन मुमुक्षु मण्डल एवं अखिल भा.जैन युवा फैडरेशन, अलवर के सहयोग से दिनांक 15 से 21 फरवरी 07 तक श्री रत्नत्रय दि. जिनमन्दिर हेतु श्री नेमिनाथ दिगम्बर जिनबिम्ब पंचकल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव सानन्द सम्पन्न हुआ।

इस अवसर पर देश-विदेश में ख्यातिप्राप्त तार्किक विद्वान **डॉ. हुकमचन्दजी भारिल्ल** के पंचकल्याणक प्रतिष्ठा पर प्रासंगिक प्रवचनों के अतिरिक्त डॉ. उत्तमचन्दजी सिवनी, पण्डित अभयकुमारजी शास्त्री देवलाली, ब्र. कैलाशचंदजी 'अचल' ललितपुर, पण्डित राकेशकुमारजी दिल्ली, पण्डित अरुणकुमारजी शास्त्री भरतपुर, पण्डित राजकुमारजी शास्त्री बांसवाड़ा, पण्डित मनीषजी शास्त्री रहली आदि विद्वानों के विभिन्न विषयों पर सारगर्भित प्रवचनों का लाभ मिला। बालकक्षा का संचालन पण्डित विरागजी शास्त्री जबलपुर ने किया।

पंचकल्याणक की सम्पूर्ण प्रतिष्ठा-विधि प्रतिष्ठाचार्य बाल ब्र. जतीशचन्दजी शास्त्री सनावद के निर्देशन में सह प्रतिष्ठाचार्य पण्डित शांतिकुमारजी पाटील जयपुर, पण्डित मधुकरजी जलगाँव, पण्डित ऋषभजी शास्त्री छिंदवाड़ा, पण्डित मनीषजी शास्त्री पिड़ावा, पण्डित सुबोधजी शास्त्री शाहगढ़, पण्डित रतनचन्दजी शास्त्री कोटा, पण्डित गजेन्द्रजी शास्त्री भरतपुर, पण्डित सुनीलजी 'धवल' भोपाल, पण्डित सुकुमालजी झांझरी उज्जैन, पण्डित प्रियंकजी शास्त्री रहली, पण्डित अश्विनजी नानावटी नौगामा, पण्डित निखिलजी शास्त्री कोतमा, पण्डित राहुलजी शास्त्री अलवर, पण्डित सचिनजी शास्त्री गढ़ी, पण्डित अंकितजी शास्त्री लूणदा, पण्डित कांतिकुमारजी इन्दौर, पण्डित बाबूलालजी बांझल गुना ने सम्पन्न कराई।

महिला जागृति मण्डल, जयपुर ने महासती अंजना, चेतन एन्क्लेव के बालकों ने पुरुरवा भील एवं सांस्कृतिक नाट्य मण्डल मण्डलेश्वर ने नेमि-राजुल वैराग्य नाटिका का मंचन किया।

20 फरवरी को नवनिर्मित पाठशाला एवं स्वाध्याय भवन के उद्घाटनपूर्वक जिनमन्दिर एवं स्वाध्याय भवन में जिनवाणी विराजमान की गई तथा 21 फरवरी को जिनेन्द्र शोभायात्रापूर्वक जिनमन्दिर में जिनप्रतिमायें विराजमान कर शिखर एवं वेदी पर कलशारोहण किया गया।

सम्पूर्ण कार्यक्रम सकल जैन समाज अलवर के विशेष सहयोग एवं निर्देशन में स्थानीय विद्वान पण्डित प्रेमचन्दजी शास्त्री एवं पण्डित अजितजी शास्त्री के अथक् प्रयासों से सम्पन्न हुआ।

इस अवसर पर डॉ. हुकमचन्दजी भारिल्ल के **६ हजार २४० घण्टों के प्रवचनों की सी.डी कैसिट्स एवं पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट से प्रकाशित ५० हजार रुपये** का सत्साहित्य घर-घर पहुँचा।

2. भुज (गुज.) : यहाँ श्रीमद् राजचन्द्र साधना केन्द्र कुकुमा भुज में तीर्थधाम मंगलायतन के निर्देशन में दिनांक 20 से 26 फरवरी, 2007 तक श्री महावीरस्वामी दिगम्बर जिनबिम्ब पंचकल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव सानन्द सम्पन्न हुआ।

इस प्रसंग पर डॉ. हुकमचन्दजी भारिल्ल जयपुर के पंचकल्याणक महोत्सव पर प्रासंगिक प्रवचनों के अतिरिक्त पण्डित हेमन्तभाई गाँधी, ब्र. आत्मानंदजी कोबा, श्री राकेशजी जबेरी, पण्डित आलोकजी शास्त्री कारंजा एवं श्री पूर्णरत्नजी के प्रवचनों का लाभ मिला।

सम्पूर्ण प्रतिष्ठा महोत्सव प्रतिष्ठाचार्य बाल ब्र. पण्डित अभिनन्दनकुमारजी शास्त्री खनियांधाना के प्रतिष्ठाचार्यत्व एवं श्री पवनजी जैन मंगलायतन व पण्डित अशोकजी लुहाडिया मंगलायतन के निर्देशन में पण्डित संजयजी शास्त्री जेवर, पण्डित ऋषभकुमारजी शास्त्री छिन्दवाड़ा, पण्डित मनीषकुमारजी शास्त्री पिड़ावा आदि के सहयोग से सम्पन्न हुआ।

इस अवसर पर पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट से प्रकाशित लगभग 18000 रुपयों का सत्साहित्य एवं डॉ. भारिल्ल की 8560 घण्टों की सी.डी. कैसिट्स घर-घर पहुँची। ●

वार्षिकोत्सव सम्पन्न

1. दिल्ली (आत्मसाधना केन्द्र) : यहाँ पंचकल्याणक की द्वितीय वर्षगाँठ के अवसर पर दिनांक 11 फरवरी,07 को विद्यमान बीस तीर्थंकर विधान का आयोजन हुआ। विधि-विधान के सम्पूर्ण कार्य बाल ब्र. जतीशचन्दजी शास्त्री, सनावद के निर्देशन में सम्पन्न हुये। इस अवसर पर पण्डित मनीषजी शास्त्री, रहली के प्रवचनों का लाभ उपस्थित श्रोताओं को मिला।

2. विदिशा (म.प्र.) : यहाँ श्री शीतलनाथ दिग. जैन बड़ा मन्दिर का पंचम वार्षिकोत्सव दिनांक 15 से 18 फरवरी, 07 तक मनाया गया। इस अवसर पर श्री शिखरचन्दजी संजयकुमारजी जैन (अलंकार ज्वैलर्स) एवं जितेन्द्रकुमारजी सत्येन्द्रकुमारजी जैन लश्करी परिवार द्वारा श्री शीतलनाथ मण्डल विधान, आध्यात्मिक शिक्षण-शिविर एवं मस्तकाभिषेक का आयोजन हुआ।

शिविर में पण्डित प्रकाशजी झांझरी उज्जैन एवं पण्डित कमलचन्दजी पिड़ावा के प्रवचन हुये।

'भ. महावीर जन्मभूमि का सच' लोकार्पित

नई दिल्ली : अ.भा. दि. जैन विद्वत्परिषद् के मंत्री डॉ. राजेन्द्रकुमारजी बंसल की कृति **भगवान महावीर जन्मभूमि का सच** का लोकार्पण 4 फरवरी 07 को श्री कुन्दकुन्द भारती, नई दिल्ली में आचार्य श्री विद्यानन्दजी महाराज एवं उपाध्याय गुप्तिसागरजी के पावन सान्निध्य में **महामहिम उपराष्ट्रपति भैरोसिंहजी शेखावत** ने किया। कृति का संपादन श्री अखिलजी बंसल ने किया।

ग्रीष्मकालीन शिक्षण प्रशिक्षण शिविर इस वर्ष देवलाली में दिनांक 8 मई से 25 मई, 2007 तक आयोजित होगा। आप सभी को पधारने हेतु हमारा हार्दिक आमंत्रण है। विस्तृत कार्यक्रम आगामी अंक में देखें।

आध्यात्मिक शिक्षण शिविर सम्पन्न

भोपाल (म.प्र.) : श्री आदिनाथ दि. जैन मंदिर पिपलानी में दिनांक 15 फरवरी से 3 मार्च 2007 तक प्रथम बार आध्यात्मिक शिक्षण-शिविर का आयोजन किया गया।

इस अवसर पर ब्र. यशपालजी जैन जयपुर द्वारा गुणस्थान विवेचन व जिनधर्म प्रवेशिका की मार्मिक कक्षा ली गई। आपके अतिरिक्त ब्र. हेमचन्दजी हेम द्वारा प्रवचनसार एवं श्री माणकचन्दजी जैन द्वारा छहढाला ग्रन्थ पर प्रवचन हुये। आपके अतिरिक्त ब्र. नन्हेभाईजी सागर, पण्डित अश्विनभाई शाह मुम्बई, ब्र. राजमलजी जैन भोपाल, डॉ. कपूरचन्दजी कौशल भोपाल, पण्डित कस्तूरचन्दजी विदिशा आदि विद्वानों के भी मार्मिक प्रवचन हुये।

शिविर में ब्र. यशपालजी जैन द्वारा पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट का परिचय तथा यहाँ से प्रकाशित साहित्य के विषय में जानकारी दी गई, जिससे प्रभावित होकर साधर्मियों द्वारा प्रवचनसार की कीमत कम करने हेतु 14167/- रुपये प्राप्त हुये।

ज्ञातव्य है कि दिनांक 3 व 4 मार्च को ब्र. यशपालजी के दो प्रवचन चौक मंदिर में हुये।

डॉ. राजेन्द्र बंसल को बरैया पुरस्कार

अशोकनगर (म.प्र.) : सुप्रसिद्ध लेखक एवं समन्वयवाणी के वरिष्ठ मुख्य उप-सम्पादक डॉ. राजेन्द्रकुमारजी बंसल, अमलाई को अ. भा.दि. जैन विद्वत्परिषद् द्वारा प्रवर्तित **श्री गोपालदास बरैया पुरस्कार** विद्वत्परिषद् के राष्ट्रीय अध्यक्ष **डॉ. हुकमचन्दजी भारिल्ल** द्वारा दिनांक 23 जनवरी07 को समारोहपूर्वक प्रदान किया गया।

इस अवसर पर विद्वत्परिषद् के महामंत्री डॉ. सत्यप्रकाश जैन ने डॉ. बंसल का परिचय दिया। आपको 5 हजार रुपये की नगद राशि, शॉल, श्रीफल, प्रशस्तिपत्र व प्रतीक-चिह्न भेंट किया गया। संचालन विद्वत्परिषद् के प्रचार-प्रकाशन मंत्री श्री अखिलजी बंसल ने किया।

डॉ. भारिल्ल के आगामी कार्यक्रम

15 अप्रैल, 07	मुम्बई	मुख्य अतिथि (जैन युवा संघ)
16 से 19 अप्रैल, 07	देवलाली	गुरुदेव जयन्ती
05 से 07 मई, 07	देवलाली	मुमुक्षु व विद्वत् सम्मेलन
08 से 25 मई, 07	देवलाली	प्रशिक्षण-शिविर
31 मई से 06 जून, 07	लंदन	धर्मप्रचारार्थ
07 जून से 22 जुलाई, 07	अमेरिका	धर्मप्रचारार्थ
03 से 12 अगस्त,07	जयपुर	शिक्षण-शिविर
08 से 15 सितम्बर, 07	मुम्बई (भारतीय विद्याभवन)	श्वेताम्बर पर्यूषण
16 से 26 सितम्बर, 07	मुम्बई (भारतीय विद्याभवन)	दशलक्षण महापर्व

अष्टान्हिका महापर्व सानन्द सम्पन्न

1. मुम्बई : श्री दिगम्बर जैन मुमुक्षु समाज मुम्बई के तत्त्वावधान में फाल्गुन माह की अष्टान्हिका पर्व के अवसर पर दिनांक 24 फरवरी से 3 मार्च, 2007 तक आध्यात्मिक व्याख्यानमाला का आयोजन निम्न स्थानों पर किया गया। **सीमंधर जिनालय** में पण्डित चंदुभाईजी मेहता फतेपुर, **दादर** में पण्डित वीरेन्द्रकुमारजी जैन आगरा, **घाटकोपर** में पण्डित सोनूजी शास्त्री मुम्बई, **मलाड (ई.)** में पण्डित कमलकुमारजी जबेरा, **मलाड (वे.)** में पण्डित विपिनकुमारजी शास्त्री आगरा, **बोरिवली** में पण्डित नरेन्द्रकुमारजी जैन जबलपुर, **दहीसर** में पण्डित सौरभजी शास्त्री शाहगढ़, **भायंदर** में ब्र. नन्हेलालजी जैन सागर तथा **देवलाली** में पण्डित अभयकुमारजी शास्त्री व पण्डित शांतिलालजी सौगाणी महिदपुर के प्रवचनों द्वारा महती धर्म प्रभावना हुई।

२. दिल्ली : यहाँ अध्यात्मतीर्थ आत्मसाधना केन्द्र में पर्व के अवसर पर श्री विमलकुमारजी जैन नीरू कैमिकल्स की ओर से इन्द्रध्वज मण्डल विधान का आयोजन किया गया।

विधान के समस्त कार्य ब्र. जतीशचन्दजी शास्त्री के निर्देशन में पण्डित सुबोधजी शास्त्री शाहगढ़, पण्डित प्रयंकजी शास्त्री रहली, पण्डित श्रेयांसजी शास्त्री अभाना एवं पण्डित कांतिकुमारजी इन्दौर ने सम्पन्न कराये। इस अवसर पर पण्डित पूनमचन्दजी छाबड़ा, पण्डित अनिलजी शास्त्री भिण्ड, पण्डित संजीवकुमारजी गोधा जयपुर एवं पण्डित मनीषजी शास्त्री रहली के प्रवचनों का लाभ मिला।

३. कोलकाता : यहाँ श्री कुन्दकुन्द कहान दि. जैन स्वाध्याय मंदिर ट्रस्ट के तत्त्वावधान में श्री महावीर जिनमंदिर में पंचमेरु नन्दीश्वर विधान का आयोजन हुआ। इस अवसर पर ब्र. कैलाशचन्दजी अचल के मार्मिक प्रवचन हुये तथा प्लास्टर ऑफ पेरिस द्वारा निर्मित पंचमेरु नन्दीश्वर द्वीप की रचना को पण्डित अशोकजी शास्त्री ने समझाया। विधि-विधान के कार्य पण्डित अभिनवजी शास्त्री ने कराये।

४. अजमेर (राज.) : यहाँ श्री वीतराग-विज्ञान स्वाध्याय मंदिर ट्रस्ट अजमेर में श्री योगसार मण्डल विधान का आयोजन हुआ। विधान का उद्घाटन श्री प्रदीपकुमारजी चौधरी किशनगढ़ ने किया। इस अवसर पर पण्डित जयकुमारजी जैन बांरा के तीनों समय मार्मिक प्रवचन हुये।

विधान के कार्य पण्डित सुनीली धवल के निर्देशन में स्थानीय संगीत मण्डली ने कराये।

५. रतलाम (राज.) : यहाँ श्री दि. जैन मंदिर में पण्डित कमलचन्दजी जैन पिड़ावा के 47 शक्तियों पर मार्मिक प्रवचन हुये। साथ ही पण्डित पदमकुमारजी अजमेरा के प्रवचनों का लाभ मिला।

धर्मेन्द्र जैन स्वर्णपदक से सम्मानित

श्री टोडरमल दि. जैन सिद्धान्त महाविद्यालय, जयपुर के स्नातक पण्डित धर्मेन्द्रकुमारजी शास्त्री, जयपुर को **जैनदर्शनाचार्य** विषय की मैरिट लिस्ट में **प्रथम स्थान** प्राप्त करने पर सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी (उ.प्र.) एवं भगवानदास शोभालाल वाराणसी की ओर से प्रदत्त दो स्वर्णपदकों एवं प्रमाण-पत्र से सम्मानित किया गया।

आपको महाविद्यालय परिवार की ओर से हार्दिक बधाई ! **ह्न प्रबन्ध सम्पादक**

आत्मार्थी छात्रों को अपूर्व अवसर

आत्मार्थी छात्र डॉ. हुकमचन्दजी भारिल्ल के सान्निध्य में रहकर चारों अनुयोगों के माध्यम से जैनधर्म का सैद्धान्तिक अध्ययन कर सकें तथा साथ ही संस्कृत, न्याय, व्याकरण आदि विषयों का आवश्यक ज्ञान प्राप्त करे ह्न इस महत्त्वपूर्ण उद्देश्य से जयपुर में विभिन्न ट्रस्टों के सहयोग से श्री टोडरमल दिगम्बर जैन सिद्धान्त महाविद्यालय चल रहा हैं, जिसमें लगभग 169 छात्र अध्ययन कर रहे हैं।

अबतक 458 छात्र शास्त्री परीक्षा उत्तीर्ण करके शासकीय एवं अर्द्धशासकीय सेवाओं में रहकर विभिन्न स्थानों में तत्त्वप्रचार की गतिविधियाँ संचालित कर रहे हैं, जिनमें से 52 छात्र जैनदर्शनाचार्य की स्नातकोत्तर परीक्षा उत्तीर्ण कर चुके हैं।

ज्ञातव्य है कि यहाँ प्रवेश पानेवाले छात्रों को राजस्थान संस्कृत वि. वि. की जैनदर्शन (त्रिवर्षीय शास्त्री स्नातक) कोर्स की परीक्षायें दिलाई जाती हैं, जो बी.ए. के समकक्ष हैं तथा सरकार द्वारा आई.ए.एस जैसी किसी भी सर्वमान्य प्रतियोगिता परीक्षा में सम्मिलित होने के लिये मान्यता प्राप्त हैं।

शास्त्री परीक्षा में प्रवेश के पूर्व छात्र को योग्यतानुसार दो वर्ष का राजस्थान माध्यमिक शिक्षा बोर्ड, अजमेर (राज.) का उपाध्याय परीक्षा का पाठ्यक्रम पढ़ाया जाता है जो हायर सैकेण्ड्री (12वीं) के समकक्ष है। इसप्रकार कुल 5 वर्ष का पाठ्यक्रम है। इसके बाद दो वर्ष का जैनदर्शनाचार्य का कोर्स भी है, जो एम.ए. के समकक्ष है।

उपाध्याय में प्रवेश हेतु किसी भी प्रदेश के माध्यमिक शिक्षा बोर्ड की सेकेण्डरी (दसवीं) परीक्षा विज्ञान, गणित, सामाजिक विज्ञान व अंग्रेजी सहित उत्तीर्ण होना आवश्यक है।

यहाँ डॉ.हुकमचन्दजी भारिल्ल, पण्डित रतनचन्दजी भारिल्ल, बाल ब्र. यशपालजी जैन, पण्डित शान्तिकुमारजी पाटील, पण्डित संजीवकुमारजी गोधा एवं पण्डित पीयूषकुमारजी शास्त्री के सान्निध्य में छात्रों को निरंतर आध्यात्मिक वातावरण प्राप्त होता है।

सभी छात्रों को आवास एवं भोजन की सुविधा नि:शुल्क रहती है।

आगामी सत्र 15 जून 2007 से प्रारंभ होगा। स्थान अत्यंत सीमित है, अत: प्रवेशार्थी शीघ्र ही निम्नांकित पते से प्रवेशफार्म मंगाकर अपना प्रार्थना-पत्र अंक सूची सहित जयपुर प्रेषित करें। यदि प्रवेश योग्य समझा गया तो उन्हें **देवलाली-नासिक (महाराष्ट्र) में 08 मई से 25 मई, 2007 तक** होनेवाले ग्रीष्मकालीन प्रशिक्षण शिविर में साक्षात्कार हेतु बुलाया जायेगा, जिसमें उन्हें प्रारंभ से अन्त तक (18 दिन) रहना अनिवार्य होगा।

यदि दसवीं का परीक्षाफल अभी उपलब्ध न हुआ हो तो पूर्व परीक्षाओं की अंक सूची की सत्यप्रतिलिपि के साथ प्रार्थनापत्र भेज सकते हैं। दसवीं का परीक्षा परिणाम प्राप्त होते ही तुरंत भेज दें।

देवलाली का पता –
पूज्यश्री कानजीस्वामी स्मारक ट्रस्ट,
कहाननगर, लामरोड, बेलतगांव रास्ता
देवलाली-नासिक-422401 (महा.)
फोन - (0253) 2492278, 2492274

पण्डित रतनचन्द भारिल्ल
श्री टोडरमल दि. जैन सिद्धा. महाविद्यालय,
श्री टोडरमल स्मारक भवन,
ए-4, बापूनगर, जयपुर 302015 (राज.)
फोन - (0141) 2705581, 2707458